राजस्थान उच्च न्यायालय

जयपुर बेंच

एस.बी. सिविल रिट याचिका संख्या 5744/2015

राजस्थान राज्य पथ परिवहन निगम, परिवहन मार्ग, सी स्कीम, जयपुर इसके अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक के माध्यम से

----याचिकाकर्ता

बनाम

1. मेसर्स भगवती एंटरप्राइजेज अपने पावर ऑफ अटॉर्नी धारक श्री एम.एस. सोमानी पुत्र श्री एम.एल. सोमानी के माध्यम से, 101, क्लासिक सेंटर, प्रथम तल, 575 एमजी रोड, इंदौर एमपी।
2. न्यायमूर्ति श्रीमती मोहिनी कपूर सेवानिवृत्त, एकमात्र मध्यस्थ, सी-3, मालवीय नगर, सेंट एंसेलम स्कूल के सामने, जयपुर

----उत्तरदाता

याचिकाकर्ता(यों) के लिए : श्री.आर.एन. माथुर, वरिष्ठ अधिवक्ता,
श्री. उत्कर्ष दुबे
प्रतिवादी(ओं) के लिए : श्री.ए.के. शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता,
श्री. तेज प्रताप सिंह एवं श्री. शोभित व्यास

माननीय श्री.न्यायमूर्ति समीर जैन

<u>आदेश</u>

<u>रिपोर्ट योग्य</u>

<u>आरक्षित तिथि: 17/10/2023</u>

<u>घोषित तिथि:</u> 02/02/2024

1. वर्तमान याचिका के माध्यम से, सिविल विविध प्रकरण संख्या 54/2011, राजस्थान राज्य पथ परिवहन निगम बनाम मैसर्स भगवती एंटरप्राइजेज एवं अन्य में अतिरिक्त जिला न्यायाधीश संख्या 5, जयपुर महानगर द्वारा पारित दिनांक 10.12.2014 के आक्षेपित आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके तहत परिवादी द्वारा दिनांक 20.09.2014 को प्रस्तुत आवेदन खारिज एवं/या अस्वीकृत किया गया था।

2. तत्काल याचिका के प्रभावी निपटान के लिए आवश्यक अपरिहार्य और संक्षिप्त तथ्यात्मक मैट्रिक्स, नीचे उल्लिखित है:-

(इस मामले में डी.बी. एसएडब्ल्यू/324/2024 दायर किया गया है। कृपया आगे के आदेशों के लिए इसे देखें)
(29/05/2025 को सुबह 11:02:03 बजे डाउनलोड किया गया)

2.1 घरेलू वस्तुओं/लघु वाणिज्यिक वस्तुओं को 4000 बसों के बेड़े के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान तक परिवहन हेतु एकमात्र लाइसेंसधारी की नियुक्ति के लिए निविदा आमंत्रण सूचना अर्थात एनआईटी दैनिक समाचार पत्रों 'राजस्थान पत्रिका' और 'दैनिक भास्कर' में प्रकाशित की गई थी।

2.2 उक्त एनआईटी के नियम व शर्तें भावी आवेदकों के अवलोकन और/या विचारार्थ निविदा प्रपत्र में शामिल कर दी गई हैं। इसमें उल्लिखित शर्तों में से एक शर्त यह है कि सफल निविदाकर्ता को निविदा प्रपत्र में पहले से ही निर्धारित शर्तों पर, निविदा प्रपत्र में उल्लिखित शर्तों पर, निविदाकर्ता के साथ एक समझौता करना होगा।

2.3 विज्ञापन/एनआईटी के जवाब में बयाना राशि के साथ चार आवेदन प्राप्त हुए। उत्तरदाता संख्या 1, जिसने 25.01.2005 के पत्र के साथ निविदा दस्तावेज प्रस्तुत किए थे, ने सबसे अधिक राशि की पेशकश की थी। इसके बाद, उत्तरदाता संख्या 1 को 31.01.2005 का पत्र भेजा गया, जिसमें उसे अपने प्रस्ताव की स्वीकृति के बारे में सूचित किया गया और इसके साथ ही, उसे शर्त संख्या 4 के अनुसार डिमांड ड्राफ्ट/बैंकर चेक के माध्यम से 6,66,786/- रुपये की सुरक्षा राशि और साथ ही एनआईटी की शर्त संख्या 18 के अनुसार छह महीने के लिए अनुसूचित बैंक का 40,00,716/- रुपये का लाइसेंस शुल्क जमा करने के लिए कहा गया, ताकि समझौते को निष्पादित किया जा सके।

2.4 यह कि दिनांक 22.02.2005 को उत्तरदाता संख्या 1 को निविदा आवेदन में निर्धारित लागू नियमों और शर्तों के साथ दिनांक 21.03.2005 से 20.03.2008 तक तीन वर्ष की अवधि के लिए एकमात्र विक्रय लाइसेंसधारी के रूप में नियुक्ति के बारे में सूचित किया गया था।

2.5 उत्तरदाता संख्या 1 ने दिनांक 19.03.2005 को पत्र भेजकर कहा कि उन्हें अभी तक समझौते की औपचारिक शर्तें प्राप्त नहीं हुई हैं, जिससे वे इसे निष्पादित कर सकें और इस प्रकार, बस स्टैंड पर आवंटित कार्यालय परिसर में अपेक्षित सेवाएं प्रदान करने के लिए केंद्रों को सक्रिय करने के लिए कार्रवाई शुरू कर सकें।

2.6 तत्पश्चात्, अनुबंध के निष्पादन हेतु निर्धारित प्रपत्र उत्तरदाता संख्या 1 को उपलब्ध कराया गया।

2.7 प्रोफार्मा अनुबंध प्राप्त होने पर, उत्तरदाता संख्या 1 ने दिनांक 23.03.2005 को एक पत्र प्रस्तुत किया, जिसमें उत्तरदाता से अनुबंध की प्रस्तावित शर्तों से शर्त संख्या 29 और 30 को हटाने तथा 'परमिट' संबंधी एक खंड भी शामिल करने का अनुरोध किया गया था।

(इस मामले में डी.बी. एसएडब्ल्यू/324/2024 दायर किया गया है। कृपया आगे के आदेशों के लिए इसे देखें)
(29/05/2025 को सुबह 11:02:03 बजे डाउनलोड किया गया)

उक्त पत्र 28.03.2005 को प्राप्त हुआ था।

2.8 इसी बीच, उत्तरदाता क्रमांक 1 ने इंदौर में 100/- रुपये का गैर-न्यायिक स्टाम्प पेपर खरीदा और उस पर निर्धारित प्रारूप में अनुबंध टाइप करवाया, जिस पर उसके स्वामी श्री संजय सोमानी ने 28.03.2005 को हस्ताक्षर किए। उसी दिन, इंदौर निवासी दो गवाहों ने भी अनुबंध पर हस्ताक्षर किए। तत्पश्चात, अनुबंध जयपुर भेजा गया, जिस पर 29.03.2005 को याचिकाकर्ता के अध्यक्ष ने हस्ताक्षर किए।

2.9 कि जब समझौते वाली फाइल को याचिकाकर्ता के वित्तीय सलाहकार द्वारा वापस प्राप्त किया गया था, जिसे कार्यकारी निदेशक (प्रशासन) के साथ गवाह के रूप में हस्ताक्षर करना था, याचिकाकर्ता के अध्यक्ष के हस्ताक्षरों के अनुसार, यह देखा गया कि एक हस्तलिखित नोट जिसमें लिखा था "वैध माल परमिट पूर्व-आवश्यकता है और खंड संख्या 29 और 30 स्वीकार्य नहीं हैं" उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा समझौते के पृष्ठ संख्या 7 पर प्रक्षेपित किया गया था, जो वहां नहीं था और/या अनुपस्थित था, जब फाइल को याचिकाकर्ता के अध्यक्ष को उनके हस्ताक्षर के लिए भेजा गया था।

2.10 यह कि हस्तलिखित नोट के इस जोड़ को देखते हुए, वित्तीय सलाहकार ने 31.03.2005 को अपने चैंबर में एक बैठक बुलाई जिसमें कार्यकारी निदेशक (प्रशासन) और कार्यकारी प्रबंधक (विज्ञापन) और उत्तरदाता संख्या 1 के स्वामी ने भाग लिया।

2.11 उत्तरदाता संख्या 1 के स्वामी को अनुबंध के पृष्ठ संख्या 7 पर हस्तलिखित नोट दिखाया गया, जिससे अनुबंध निरस्त हो गया, क्योंकि यह नोट उनके द्वारा विधिवत स्वीकृत अनुबंध के पृष्ठ संख्या 6 पर टाइप किए गए खंड संख्या 29 और 30 के विपरीत था। तदनुसार, उत्तरदाता संख्या 1 के स्वामी से निर्धारित प्रपत्र में एक नया अनुबंध प्रस्तुत करने का अनुरोध किया गया। वित्तीय सलाहकार ने बैठक का एक नोट तैयार किया, जिसे बाद में याचिकाकर्ता के अध्यक्ष को भेजा गया।

2.12 चूंकि उत्तरदाता संख्या 1 निर्धारित प्रपत्र में नया अनुबंध प्रस्तुत करने के लिए तैयार नहीं था, तथा पहले से स्वीकृत नियमों और शर्तों के अनुसार कार्य निष्पादित करने पर जोर दे रहा था, इसलिए प्राधिकरण ने उत्तरदाता संख्या 1 को 5 दिनों की अवधि के भीतर निर्धारित प्रपत्र में नया अनुबंध प्रस्तुत करने के लिए दिनांक 01.04.2005 को एक पत्र जारी किया।

2.13 तत्पश्चात्, उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा दिनांक 01.04.2005, 05.04.2005 तथा 06.04.2005 को पत्र भेजकर पहले से निष्पादित समझौते की प्रति उपलब्ध कराने का

(इस मामले में डी.बी. एसएडब्ल्यू/324/2024 दायर किया गया है। कृपया आगे के आदेशों के लिए इसे देखें)
(29/05/2025 को सुबह 11:02:03 बजे डाउनलोड किया गया)

अनुरोध किया गया, यद्यपि उत्तरदाता संख्या 1 ने निर्धारित प्रारूप में नया समझौता पत्र नहीं भेजा।

2.14 इस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, बम्बई ने अपना दिनांक 22.02.2005 का पत्र रद्द कर दिया, जिसके माध्यम से उत्तरदाता संख्या 1 को एकमात्र विक्रय लाइसेंसधारी नियुक्त किया गया था। परिणामस्वरूप, उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा अनुबंध की शर्तों को पूरा करने में विफलता बताते हुए, याचिकाकर्ता ने दिनांक 16.04.2005 के पत्र द्वारा बयाना राशि और सुरक्षा जमा राशि दोनों जब्त कर ली।

2.15 उत्तरदाता संख्या 1 ने दिनांक 03.05.2005 को पत्र द्वारा माननीय न्यायाधीश को अपने द्वारा सुझाए गए पैनल में से एक मध्यस्थ नियुक्त करने का अनुरोध किया था। उत्तर में, माननीय न्यायाधीश द्वारा दिनांक 24.05.2005 को पत्र भेजकर उत्तरदाता संख्या 1 को सूचित किया गया कि समझौते के खंड 28 में अध्यक्ष-आरएसआरटीसी को मध्यस्थ के रूप में नामित किया गया है।

2.16 तत्पश्चात, उत्तरदाता संख्या 1 ने मध्यस्थता एवं सुलह अधिनियम, 1996 (संक्षेप में, अधिनियम 1996) की धारा 11 के अंतर्गत इस न्यायालय में एक आवेदन प्रस्तुत किया। उक्त आवेदन का पक्षकार द्वारा इस आधार पर विरोध किया गया कि चूँकि पक्षकारों के बीच कोई अनुबंध नहीं हुआ है, इसलिए उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा धारा 11 के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन स्वीकार्य नहीं है।

2.17 दोनों पक्षों को सुनने के पश्चात्, इस न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 16.04.2005 द्वारा याचिकाकर्ता की आपत्तियों को खारिज कर दिया और उत्तरदाता संख्या 2 को एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त किया। व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक विशेष अनुमति याचिका (एसएलपी) दायर की, जिसमें उत्तरदाता संख्या 1 को नोटिस जारी किए गए और एकमात्र मध्यस्थ के समक्ष कार्यवाही पर रोक लगा दी गई।

2.18 कि इसके बाद, एसएलपी को अनुमति दी गई और इसे सिविल अपील संख्या 5137/2007 में परिवर्तित कर दिया गया जिसका शीर्षक आरएसआरटीसी और अन्य बनाम मेसर्स भगवती एंटरप्राइजेज है। दोनों पक्षों को सुनने के बाद, 10.12.2009 के आदेश द्वारा इसका निर्णय लिया गया जिसमें पक्षकारों की आपत्तियों पर विचार किया गया और यह माना गया कि पहले बिंदु के संबंध में, यानी कि क्या पक्षों के बीच कोई अनुबंध नहीं हुआ था, कि 1996 के अधिनियम की धारा 16 में कहा गया है कि मध्यस्थ न्यायाधिकरण इस न्यायालय के किसी भी अवलोकन से अप्रभावित होकर उक्त मुद्दे पर

(इस मामले में डी.बी. एसएडब्ल्यू/324/2024 दायर किया गया है। कृपया आगे के आदेशों के लिए इसे देखें)
(29/05/2025 को सुबह 11:02:03 बजे डाउनलोड किया गया)

निर्णय ले सकता है। संक्षेप में, उत्तरदाता संख्या 2 की एकमात्र मध्यस्थ के रूप में नियुक्ति को रद्द नहीं किया गया था।

2.19 कि इसके बाद, एकमात्र मध्यस्थ यानी उत्तरदाता संख्या 2 के समक्ष मध्यस्थता कार्यवाही शुरू हुई। कुल मिलाकर, चार मुद्दे तैयार किए गए। उत्तरदाता संख्या 1 की ओर से सोमानी सीडब्ल्यू-1 की जांच की गई, जबकि श्री जे.जे. गुप्ता, कार्यकारी प्रबंधक (विज्ञापन) आरडब्ल्यू-1 की जांच याचिकाकर्ता की ओर से की गई।

2.20 दोनों पक्षों को सुनने के बाद, विद्वान मध्यस्थ न्यायाधिकरण ने उत्तरदाता संख्या 1 के पक्ष में 18.09.2011 को 6,53,20,86,367/- रुपये के साथ 10.01.2011 से वसूली तक 12% प्रति वर्ष ब्याज का पुरस्कार पारित किया।

2.21 यह कि उपरोक्त निर्णय से व्यथित होकर, 1996 के अधिनियम की धारा 34 के अन्तर्गत आपत्तियां अतिरिक्त जिला न्यायाधीश संख्या 5, जयपुर महानगर (इसके पश्चात्, निम्न विद्वान न्यायालय) के समक्ष प्रस्तुत की गई, जिस पर उत्तर तथा तत्पश्चात् प्रत्युत्तर भी प्रस्तुत किया गया।

2.22 यह कि याचिकाकर्ता ने 09.11.2012 को सिविल प्रक्रिया संहिता (इसके बाद सीपीसी) की धारा 151 के साथ 1996 के अधिनियम की धारा 18 के तहत एक आवेदन भी प्रस्तुत किया, जिसमें प्रार्थना की गई कि तीन गवाहों के बयान, जिन्होंने समझौते के निष्पादन के समय फ़ाइल को संभाला था, को नीचे के विद्वान न्यायालय द्वारा दर्ज किया जाए, क्योंकि बिंदु पर एक विशिष्ट मुद्दे के अभाव में कोई सबूत नहीं दिया जा सकता था। उत्तरदाता संख्या 1 ने उक्त आवेदन पर कोई जवाब दाखिल नहीं किया। बाद में, दिनांक 17.11.2012 के आदेश के तहत, नीचे के विद्वान न्यायालय ने याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत शुरू की गई कार्यवाही में साक्ष्य रिकॉर्ड करने का कोई प्रावधान नहीं है।

2.23 इसके बाद, 11.12.2012 को आदेश 6 नियम 17 के अंतर्गत, सीपीसी की धारा 151 और 1996 के अधिनियम की धारा 82 के अंतर्गत, आपत्ति याचिका में तीन नए अनुच्छेद जोड़ने की अनुमति के लिए प्रार्थना करते हुए, प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया। हालाँकि, दिनांक 15.12.2012 के आदेश द्वारा, निम्न विद्वान न्यायालय ने उक्त आवेदन को अस्वीकार कर दिया और/या खारिज कर दिया।

2.24 इससे व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष एसआरपीपी निगम बनाम एडीजे संख्या 5 एवं अन्य शीर्षक से एस.बी. सिविल रिट याचिका संख्या

(इस मामले में डी.बी. एसएडब्ल्यू/324/2024 दायर किया गया है। कृपया आगे के आदेशों के लिए इसे देखें)
(29/05/2025 को सुबह 11:02:03 बजे डाउनलोड किया गया)

568/2013 प्रस्तुत की। दोनों पक्षों को सुनने के बाद, इस न्यायालय ने दिनांक 29.01.2013 के आदेश द्वारा याचिका को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया, जिसमें संशोधन आवेदन के पैरा XXIV और XXVI को अधिनियम 1996 की धारा 34 के अंतर्गत उठाई गई आपत्तियों में शामिल करने की अनुमति दी गई, बशर्ते कि उत्तरदाता संख्या 1 को 15,000/- रुपये का व्यय भुगतान किया जाए।

2.25 उत्तरदाता संख्या 1 ने संशोधित आपत्तियों का संशोधित उत्तर विलम्ब से अर्थात् 18.01.2014 को प्रस्तुत किया। तथापि, दोनों पक्षों को सुनने के पश्चात्, दिनांक 05.04.2014 के आदेश द्वारा, निम्न विद्वान न्यायालय ने, अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत आपत्ति आवेदन को अस्वीकार कर दिया।

2.26 इसके बाद, याचिकाकर्ता ने 20.09.2014 को नीचे के विद्वान न्यायालय के समक्ष एक और आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें प्रार्थना की गई कि चूंकि उत्तरदाता संख्या 2 ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के स्पष्ट निर्देशों के बावजूद इस मुद्दे को तैयार नहीं किया कि क्या संपन्न अनुबंध अस्तित्व में आया, इसलिए पक्ष इस बिंदु पर साक्ष्य नहीं दे सके। उक्त आवेदन में यह भी कहा गया था कि उत्तरदाता संख्या 2 ने 18.09.2011 के पुरस्कार को पारित करते समय देखा कि याचिकाकर्ता के तत्कालीन अध्यक्ष इस बात की गवाही देने के लिए सबसे अच्छे गवाह थे कि समझौते के पृष्ठ संख्या 7 पर हस्तलिखित नोट कब और किसने जोड़ा था। हालांकि, चूंकि तत्कालीन अध्यक्ष को सबूतों में पेश नहीं किया गया था और याचिकाकर्ता ने किसी भी दोषी व्यक्ति के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की और मामले की सूचना पुलिस को भी नहीं दी, इसलिए याचिकाकर्ता के खिलाफ प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला गया और परिणामस्वरूप, 6,53,20,86,367/- की राशि 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ 10.01.2011 से प्राप्ति तक का ऋण उत्तरदाता संख्या 1 को प्रदान किया गया।

2.27 कि दोनों पक्षों को सुनने के पश्चात, दिनांक 10.12.2014 के आदेश के तहत, निचली विद्वान अदालत ने अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन को खारिज कर दिया।

2.28 कि परिणामस्वरूप, दिनांक 10.12.2014 के आदेश को चुनौती देते हुए वर्तमान याचिका दायर की गई है।

3. वादिनी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.एन. माथुर ने दलील दी है कि दिनांक 10.12.2014 का आक्षेपित आदेश अवैध और अनुचित है, क्योंकि यह कानून

(इस मामले में डी.बी. एसएडब्ल्यू/324/2024 दायर किया गया है। कृपया आगे के आदेशों के लिए इसे देखें)
(29/05/2025 को सुबह 11:02:03 बजे डाउनलोड किया गया)

की स्थापित स्थिति और अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों के विरुद्ध पारित किया गया है। इस दलील के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि निचली अदालत इस तथ्य को समझने में विफल रही कि संपन्न अनुबंध की अनुपस्थिति से संबंधित मुद्दे को न सुलझाना, जो विवाद के समाधान के लिए अनिवार्य था, उसके समर्थन में दस्तावेज़ प्रस्तुत करने और गवाहों से पूछताछ करने का अधिकार सीधे उन दलीलों से उत्पन्न होता है जिनके लिए आवश्यक रूप से ऐसे साक्ष्य की आवश्यकता थी जो पक्षकारों के बीच विवाद के समाधान के लिए आवश्यक होने के बावजूद प्रस्तुत नहीं किए जा सके। तदनुसार, निचली अदालत ने धोखाधड़ी के लिए आपराधिक कार्रवाई शुरू करने में कथित विफलता के लिए वादिनी के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने में गलती की, बिना यह समझे कि कथित समझौते को रद्द करना ही अपने आप में पर्याप्त दंड था। इसके अलावा, साक्ष्य दर्ज होने तक वादिनी के अध्यक्ष की मृत्यु हो चुकी थी। तथापि, यह अभी भी कहा गया कि तत्कालीन अध्यक्ष ने स्वयं अपनी टिप्पणी में खंड 29 और 30 को हटाने की अनुमति देने के तर्क का खंडन किया था।

4. इसके अलावा, श्री आर.एन. माथुर ने तर्क दिया कि निचली अदालत यह समझने में विफल रही कि खंड 29 और 30 को हटाने का अनुरोध करने वाला दिनांक 23.05.2005 का पत्र 01.04.2005 को अध्यक्ष को चिह्नित किया गया था, जिससे किसी संपन्न अनुबंध के तथ्य को ही समाप्त/अस्वीकार कर दिया गया। इसलिए, यह प्रतिपादित किया गया कि यदि आवश्यक साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी गई तो इस न्यायालय द्वारा दी गई स्वतंत्रता निरर्थक हो जाएगी। प्रदान की गई राशि की मात्रा के संबंध में, विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि उत्तरदाता संख्या 1 को बिना कोई कार्य किए एक बड़ी राशि प्रदान की गई है, जो उक्त पुरस्कार को पूर्व-दृष्टया गलत बनाता है, जिसे रद्द और रद्द किया जाना चाहिए।

5. ऊपर उल्लिखित तर्कों के अतिरिक्त, विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि एकमात्र मध्यस्थ के समक्ष मध्यस्थता कार्यवाही शुरू होने पर, निम्नलिखित मुद्दे तैयार किए गए थे, अर्थात्:-

1. क्या उत्तरदाता ने अवैध रूप से अनुबंध रद्द किया है*?*

2. क्या उत्तरदाता ने विश्वासघात किया है*?*

3. क्या दावेदार *29,70,56,41,239/-* रुपये का दावा करने के हकदार हैं*?*

4. पक्षकार किस राहत के हकदार हैं*?*

इसलिए, एकमात्र मध्यस्थ के समक्ष तैयार किए गए सीमित मुद्दों के प्रकाश में, यह याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा तर्क दिया गया था कि नीचे का विद्वान न्यायालय इस तथ्य की सराहना करने में विफल रहा कि दस्तावेजों को पेश करने और इसके समर्थन में गवाहों की जांच करने का अधिकार यानी एक संपन्न अनुबंध के अस्तित्व के रूप में, मध्यस्थ के समक्ष दलीलों से सीधे प्रवाहित होता है, लेकिन उक्त संबंध में निर्धारण के लिए उचित मुद्दे/प्रश्नों को तैयार न करने के कारण, आवश्यक अपेक्षित साक्ष्य को याचिकाकर्ता और/या पक्षों द्वारा पेश नहीं किया जा सका।

6. विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि निचली अदालत इस तथ्य को समझने में विफल रही कि एक ओर तो विद्वान मध्यस्थ न्यायाधिकरण ने इस बारे में कोई मुद्दा नहीं बनाया कि दोनों पक्षों के बीच संपन्न अनुबंध अस्तित्व में आया या नहीं (जिससे ईश्वर के प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ), जिसके परिणामस्वरूप ईश्वर द्वारा उपरोक्त बिंदु पर निर्णय देने के लिए आवश्यक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किए गए और दूसरी ओर, एकमात्र मध्यस्थ ने ईश्वर के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला कि उन्होंने याचिकाकर्ता के तत्कालीन अध्यक्ष को यह साबित करने के लिए प्रस्तुत नहीं किया कि हस्तलिखित सामग्री को समझौते के पृष्ठ संख्या 7 पर कब और किसने प्रक्षेपित किया था। इस प्रकार, एकमात्र मध्यस्थ का दृष्टिकोण पूरी तरह से अतार्किक, अन्यायपूर्ण, मनमाना और पक्षपातपूर्ण था।

7. अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू न करने के पहलू पर, विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि विद्वान एकमात्र मध्यस्थ द्वारा आक्षेपित अवार्ड पारित करने के बाद, मध्यस्थ ने निगम के दोषी अधिकारियों/कर्मचारियों को आरोप-पत्र दिए। इसलिए, मध्यस्थ के आवेदन (अनुलग्नक-10) जिसमें तीन गवाहों श्री एस.के. खत्री, सी.एस. मूथा और श्रीमती शशि माथुर, जिन्होंने संबंधित समय पर फाइल को निपटाया था, के बयानों को दर्ज करने की प्रार्थना की गई थी, उन्हें संपन्न अनुबंध के प्रश्न को निर्धारित करने की अनुमति दी जानी चाहिए थी, क्योंकि एकमात्र मध्यस्थ यानी मध्यस्थ संख्या 2 द्वारा संपन्न अनुबंध के उक्त बिंदु पर तैयार किए गए किसी भी मुद्दे के अभाव में उक्त व्यक्तियों को मध्यस्थता कार्यवाही में प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। इस संबंध में, यह भी कहा गया कि मध्यस्थ के अध्यक्ष, श्री राम नारायण मीणा की मृत्यु भी मध्यस्थता कार्यवाही शुरू होने से बहुत पहले हो गई थी, जिससे उन्हें समझौते के पृष्ठ 7 पर हस्तलिखित नोट के अंतर्वेशन के उक्त पहलू पर गवाही देने से रोक दिया गया।

8. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि उत्तरदाता संख्या 1 ने निचली अदालत के

(इस मामले में डी.बी. एसएडब्ल्यू/324/2024 दायर किया गया है। कृपया आगे के आदेशों के लिए इसे देखें)
(29/05/2025 को सुबह 11:02:03 बजे डाउनलोड किया गया)

समक्ष यह तर्क दिया था कि संपन्न अनुबंध के पहलू पर गवाहों के बयान दर्ज करने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन पोषणीय नहीं था, क्योंकि इसी विषय पर एक पूर्व आवेदन निचली अदालत द्वारा खारिज कर दिया गया था और 1996 के अधिनियम की धारा 11 के तहत साक्ष्य दर्ज करने का कोई प्रावधान नहीं है। इस संबंध में, विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि कानून की स्थापित स्थिति के अनुसार, प्रत्येक न्यायालय/अधिकरण के पास पक्षकारों के बीच न्याय करने के लिए सभी सहायक और अंतर्निहित शक्तियाँ हैं, विधि के इस सिद्धांत के मद्देनजर कि जब तक कोई कार्रवाई कानून के प्रावधान के तहत निषिद्ध नहीं है, तब तक उसे उस आशय के विशिष्ट प्रावधानों के अभाव में भी अनुमेय माना जाना चाहिए। यह भी तर्क दिया गया कि 1996 के अधिनियम की धारा 82 उच्च न्यायालय को 1996 के अधिनियम के अनुरूप नियम बनाने की शक्तियाँ प्रदान करती है। तदनुसार, इन शक्तियों का प्रयोग करते हुए, इस न्यायालय ने दिनांक 27.01.2004 की अधिसूचना द्वारा राजस्थान मध्यस्थता नियम, 2003 प्रख्यापित किए। नियम 11 में निम्नलिखित प्रावधान है:

> *"(1)* इस अधिनियम या इन नियमों में अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रदान की गई बातों को छोड़कर, सिविल प्रक्रिया संहिता *1908* के निम्नलिखित प्रावधान और सी.पी.सी. *(*संशोधन*)* अधिनियम, *1999* और *2002* द्वारा संशोधित, किसी न्यायालय के समक्ष कार्यवाही पर लागू होंगे, जहां तक वे उस पर लागू हो सकते हैं, अर्थात्,
>
> *(i)* धारा *28, 31, 35, 35* ए, *107, 133, 135, 137, 148* ए, *151* और *152* और
>
> *(ii)* क्रम *III, V, VI, IX, XIII, XIV* से *XIX, XXIV, XLI* और *XLII*।
>
> *(2) (*क*)* उपनियम *(1)* के अधीन निर्दिष्ट उपबंधों के अनुप्रयोग को सुगम बनाने के प्रयोजन के लिए न्यायालय उनका ऐसे परिवर्तनों के साथ अर्थ लगा सकेगा, जो सार को प्रभावित न करते हुए उसके समक्ष उपस्थित विषयों के लिए आवश्यक या उचित हों*;* और
>
> (ख) न्यायालय पर्याप्त कारणों से उक्त उपबंधों के अनुसार कार्यवाही करने के अलावा अन्य कार्यवाही कर सकता है, यदि वह संतुष्ट हो कि इससे पक्षकारों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।"

9. अतः, उपर्युक्त नियम 11(1)(ii) के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि सी.पी.सी. के आदेश XVI से XIX न्यायालय के समक्ष कार्यवाही पर लागू होते हैं। इसके अतिरिक्त, अधीनस्थ न्यायालय भी, 1996 के अधिनियम की धारा 2(i)(e) में दी गई "न्यायालय" की परिभाषा के अंतर्गत आता है। सी.पी.सी. के आदेश XVI और XVII गवाहों को बुलाने और उनकी

(इस मामले में डी.बी. एसएडब्ल्यू/324/2024 दायर किया गया है। कृपया आगे के आदेशों के लिए इसे देखें)
(29/05/2025 को सुबह 11:02:03 बजे डाउनलोड किया गया)

उपस्थिति, वाद की सुनवाई और गवाहों से पूछताछ से संबंधित हैं। अतः, यह तथ्य स्थापित होता है कि अधीनस्थ न्यायालय अपने समक्ष शुरू की गई कार्यवाही में गवाहों के साक्ष्य दर्ज करने के लिए सक्षम था।

10. इसके अलावा रेस ज्यूडिकाटा के पहलू पर, श्री माथुर द्वारा प्रस्तुत किया गया था कि किसी भी मुकदमे में सक्षम न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ता के साक्ष्य की रिकॉर्डिंग/गैर रिकॉर्डिंग के बारे में किसी भी मुद्दे पर कोई निर्णय नहीं दिया गया है। इस प्रकार, रेस ज्यूडिकाटा के सिद्धांत की कोई प्रयोज्यता नहीं होगी। इसके अलावा, यह भी कहा गया कि रेस ज्यूडिकाटा के सिद्धांत इंटरलोक्यूटरी आदेशों पर लागू नहीं होते हैं। पूर्वोक्त के अलावा, यह भी तर्क दिया गया था कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन (अनुलग्नक-10 के रूप में चिह्नित) को रेस ज्यूडिकाटा के सिद्धांत द्वारा वर्जित नहीं किया गया था क्योंकि पूर्ववर्ती आवेदन (अनुलग्नक-1 के रूप में चिह्नित) की अस्वीकृति के बाद, याचिकाकर्ता को 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत प्रस्तुत अपनी आपत्तियों को संशोधित करने की अनुमति थी। इस प्रकार, मामले की परिस्थितियों में भारी परिवर्तन हो गए थे और गवाहों के बयान दर्ज करने हेतु आवेदन प्रस्तुत करने के लिए याचिकाकर्ता के समक्ष एक नया वाद-कारण उत्पन्न हो गया था। अतः, आपत्ति संख्या XXIV को सिद्ध करने के लिए, निम्नतर विद्वान न्यायालय ने दिनांक 10.12.2014 के आक्षेपित आदेश द्वारा आवेदन को अस्वीकार करके घोर अवैधता की है।

11. इसके अलावा, विद्वान वकील ने तर्क दिया कि उत्तरदाता संख्या 1 ने जाली मसौदा समझौते के आधार पर दिनांक 18.09.2011 का पुरस्कार प्राप्त किया था और इस प्रकार, यह सही रूप से तर्क दिया जा सकता है कि जालसाजी करके पुरस्कार प्राप्त किया गया है और इस तरह, 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत रद्द करने योग्य है। यह भी बताया गया कि कथित समझौते के अनुसरण में कोई भी काम किए बिना, उत्तरदाता संख्या 1 ने 6,53,20,86,367 / - रुपये का पुरस्कार प्राप्त किया है।

12. इसलिए, निष्कर्ष में, विद्वान वरिष्ठ वकील ने प्रस्तुत किया कि कार्यवाही की शुरुआत से, जो 1996 के अधिनियम की धारा 11 के तहत शुरू हुई थी, समझौते के एक संपन्न अनुबंध नहीं होने के संबंध में वकील की विशिष्ट प्रारंभिक आपत्ति पर विचार नहीं किया गया है, जो संभावित रूप से संपूर्ण मध्यस्थता कार्यवाही की वैधता को रोकता है। परिणामस्वरूप, मध्यस्थ न्यायाधिकरण के समक्ष इस संबंध में कोई मुद्दा नहीं उठाया गया, जिससे याचिकाकर्ता को इस संबंध में कोई साक्ष्य प्रस्तुत करने और/या कोई

दस्तावेज़/गवाह प्रस्तुत करने से रोक दिया गया। सक्षम न्यायालय द्वारा उक्त आपत्ति पर विधिवत विचार किया जाना चाहिए और तदनुसार, उक्त पहलू के संबंध में साक्ष्य अभिलेख पर प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना चाहिए। ऊपर उठाए गए तर्कों के समर्थन में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उस कथन पर भरोसा किया गया, जैसा कि **अल्पाइन हाउसिंग बनाम अशोक धारीवाल: सिविल अपील संख्या 73/2023, मेसर्स एम.के. ग्लोबल बनाम गिरधर सोनी (2018) 9 एससीसी 49 और फिजा डेवलपर्स बनाम एएमसीआई (2009) 17 एससीसी 796** में रिपोर्ट किया गया है। उक्त निर्णयों पर भरोसा करते हुए, यह प्रतिपादित किया गया था कि यदि सूची के निर्धारण के लिए आवश्यक कुछ पहलू रिकॉर्ड पर नहीं हैं, लेकिन धारा 34(2)(ए) के तहत उत्पन्न होने वाले मुद्दों के निर्धारण के लिए प्रासंगिक हैं, तो उन्हें हलफनामों, जिरह के माध्यम से अदालत के संज्ञान में लाया जा सकता है, इस तथ्य को देखते हुए कि दोनों पक्षों के बीच उक्त साक्ष्य(ओं) को आगे बढ़ाने के परिणामस्वरूप सच्चाई सामने आएगी। तदनुसार, यह प्रार्थना की गई कि आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया जाए और अलग रखा जाए और परिणामस्वरूप, वकील द्वारा प्रस्तुत आवेदन अर्थात अनुलग्नक-10 को अनुमति दी जाए।

13. *इसके विपरीत,* उत्तरदाता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री ए.के. शर्मा ने दलील दी है कि इस न्यायालय को आदेश में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह कानून की स्थापित स्थिति और रिकॉर्ड पर उपलब्ध तथ्यों के अनुरूप पारित किया गया है। उक्त दलील के समर्थन में, यह दावा किया गया कि 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत शुरू की गई कार्यवाही में पक्षकारों को साक्ष्य पेश करने का कोई निहित अधिकार नहीं है क्योंकि उक्त अधिनियम मामलों के शीघ्र निपटारे का आदेश देता है। विद्वान वकील ने आगे दलील दी कि जिन मुद्दों को तैयार करने की आवश्यकता नहीं थी, उन पर संक्षिप्त कार्यवाही के तहत विचार नहीं किया जा सकता है, वह भी 1996 के अधिनियम की धारा 34 से उत्पन्न आपत्ति याचिका के तहत। आगे यह तर्क दिया गया कि 1996 के अधिनियम की धारा 16(2) के प्रावधानों के अनुसार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के इस संबंध में विशिष्ट निष्कर्षों के बावजूद, मध्यस्थ विद्वान मध्यस्थ के समक्ष कोई आपत्ति लाने में विफल रहा। यह भी तर्क दिया गया कि मध्यस्थ न्यायाधिकरण के पास न्यायनिर्णयन का कोई क्षेत्राधिकार न होने की दलील को दोषों का विवरण प्रस्तुत करने के बाद ही उठाया जा सकता है।

14. इसके अलावा, विद्वान वरिष्ठ वकील ने प्रस्तुत किया कि मध्यस्थ न्यायाधिकरण ने

चार विशेष रूप से दावा किए गए मुद्दे उठाए थे, जिन्हें केवल तभी उठाया जा सकता था, जब अनुबंध संपन्न हो गया हो। श्री ए.के. शर्मा ने यह भी तर्क दिया कि 1996 के अधिनियम की योजना के अनुसार, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत दायर याचिकाओं में किसी भी अंतरिम आदेश पर विचार नहीं किया जाना चाहिए, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले में **एसबीपी बनाम पटेल इंजीनियरिंग (2005) 8 एससीसी 618** में रिपोर्ट किया गया था। विद्वान वकील ने **अरविंद कंस्ट्रक्शन बनाम कार्यकारी अभियंता सरदार सरोवर (2022) 1 एससीसी 75** में प्रतिपादित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया। उपरोक्त के प्रकाश में, यह कहा गया कि एक बार वर्ष 2012 में, उसी विषय पर, नीचे के विद्वान न्यायालय ने अतिरिक्त साक्ष्य को शामिल करने के दावे को खारिज कर दिया था, उक्त मुद्दे ने अंतिमता प्राप्त कर ली है और इसलिए, आगे बढ़ते हुए, उस प्रभाव का कोई भी दावा, रेस ज्यूडिकाटा के सिद्धांत द्वारा वर्जित होगा।

15. अंत में, अंतरिम चरण में लागू होने वाले 'पूर्व-न्यायिकता' सिद्धांत के पहलू पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **(2013) 15 एससीसी 655, एराच बोमन खावर बनाम तुकाराम श्रीधर भट एवं अन्य**, में प्रतिपादित उक्ति पर भरोसा किया गया। तदनुसार, यह प्रार्थना की गई कि आक्षेपित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और परिणामस्वरूप, वर्तमान याचिका को खारिज कर दिया जाना चाहिए।

16. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया, याचिका के अभिलेख का अवलोकन किया गया तथा बार में उद्धृत निर्णयों का अवलोकन किया गया।

17. गुण-दोष पर चर्चा से पहले, यह न्यायालय वैकल्पिक विवाद तंत्र के रूप में मध्यस्थता के मूल सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत करना उचित समझता है, जिनका हमारे समक्ष प्रस्तुत सूची पर सीधा प्रभाव पड़ेगा। इन्हें नीचे उल्लेखित किया गया है:-

17.1 वैकल्पिक विवाद तंत्र के रूप में मध्यस्थता का एक उद्देश्य और लक्ष्य, विशेष रूप से 1996 के समेकित अधिनियम का, विवादित पक्षों को उनके विवादों के समाधान हेतु एक निष्पक्ष और कुशल प्रक्रिया प्रदान करना है। ऐसे समाधान के लिए, 1996 का अधिनियम शीघ्र निपटान की परिकल्पना करता है, जिसमें विवाद के समाधान में लगने वाले समय पर प्रकाश डाला गया है।

17.2 मध्यस्थ न्यायाधिकरणों को मध्यस्थ निर्णय पारित करते समय यह सुनिश्चित करने का सामान्य कर्तव्य सौंपा गया है कि पारित निर्णय सुपरिभाषित, स्पष्ट हों तथा

मध्यस्थता समझौतों के माध्यम से किए गए दावों और इस प्रकार संदर्भित विवादों का स्पष्ट उत्तर दें, यद्यपि ऐसा करते समय वे अपने अधिकार क्षेत्र के दायरे में रहें।

17.3 उपर्युक्त के साथ, ऐसी मध्यस्थता कार्यवाहियों में न्यायालयों की भूमिका को न्यूनतम किया गया, ताकि वैकल्पिक विवाद तंत्र को मजबूत, आत्मनिर्भर और अधिक महत्वपूर्ण रूप से समय कुशल बनाया जा सके।

18. 1996 के अधिनियम की धारा 7 और 8 का सह-संयुक्त विश्लेषण यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि मध्यस्थता कार्यवाही या उक्त संबंध में संदर्भ तब तक अस्तित्व में नहीं होगा जब तक कि उक्त प्रभाव के लिए मध्यस्थता समझौता मौजूद न हो। धारा 7 स्पष्ट रूप से संकेत देती है कि मध्यस्थता समझौते का अर्थ पार्टियों द्वारा मध्यस्थता का उपयोग करके किसी विशिष्ट कानूनी संबंध के बारे में उनके बीच किसी भी विवाद को निपटाने का वादा है। यह लागू होता है चाहे विवादों का उल्लेख किसी अनुबंध में किया गया हो या नहीं। इसलिए, मध्यस्थता शुरू करने और/या लागू करने के लिए अपरिहार्य अवयवों में से एक वैध मध्यस्थता समझौते का अस्तित्व और गठन है जिसमें प्रवर्तनीयता हो, यानी एक वैध अनुबंध, जिसे मध्यस्थ खंड के साथ विधिवत निष्पादित किया गया हो। अनुबंध की सहायता से उक्त प्रवर्तनीयता के अस्तित्व में न होने पर, 1996 के अधिनियम के तहत शुरू की गई कार्यवाही संचालित होना बंद हो जाएगी इसके अतिरिक्त, एक अन्य महत्वपूर्ण घटक, जो वैध मध्यस्थता समझौते के गठन के लिए अनिवार्य है, वह है सर्वसम्मति अर्थात पक्षों द्वारा एक ही बात पर, एक ही अर्थ में, सहमत होना।

19. तात्कालिक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, यह एक स्वीकृत स्थिति है कि समझौते के निष्पादन के प्रारंभिक चरण में प्रतियोगी पक्षों के बीच विवाद उत्पन्न हुआ, अर्थात्, जब समझौते वाली फाइल को वित्तीय सलाहकार द्वारा वापस प्राप्त किया गया था, जिसे कार्यकारी निदेशक (प्रशासन) के साथ गवाह के रूप में हस्ताक्षर करना था, जो कि याचिकाकर्ता के अध्यक्ष के हस्ताक्षरों के अनुसार था, जब यह देखा गया कि उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा समझौते के पृष्ठ संख्या 7 पर "वैध माल परमिट पूर्व-आवश्यकता है और खंड संख्या 29 और 30 स्वीकार्य नहीं हैं" पढ़ने वाला एक हस्तलिखित नोट लगाया गया था, जो वहां नहीं था और/या अनुपस्थित था, जब फाइल को उनके हस्ताक्षर के लिए याचिकाकर्ता के अध्यक्ष को भेजा गया था। परिणामस्वरूप, गवाहों यानी वित्तीय सलाहकार और कार्यकारी निदेशक (प्रशासन) ने उक्त प्रक्षेप को नोटिस करने पर उक्त समझौते पर हस्ताक्षर नहीं किए थे। हालाँकि, उत्तरदाता संख्या 1 नया समझौता प्रस्तुत करने को तैयार

नहीं था, जबकि वह पहले से स्वीकृत मानी गई शर्तों और नियमों के अनुसार कार्य करने पर अड़ा रहा। इसलिए, बिना किसी संदेह के, यह निर्णायक रूप से कहा जा सकता है कि पक्षों के बीच वर्तमान विवाद, जो उपरोक्त घटनाओं के क्रम से उत्पन्न हुआ है, समझौते के निष्पादन के प्रारंभिक चरण में था।

20. परिणामस्वरूप, प्रतिवादी पक्षों ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसके तहत दिनांक 10.12.2009 के आदेश के तहत, जैसा कि सिविल **अपील संख्या 5137/2007** में पारित किया गया था, जिसका शीर्षक **राजस्थान एस.आर.टी.सी. एवं अन्य बनाम मेसर्स भगवती एंटरप्राइजेज** था, निम्नलिखित आदेश पारित किया गया, जिसका प्रासंगिक भाग नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

> यह मामला मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, *1996* (संक्षेप में, 'अधिनियम') से संबंधित है। उच्च न्यायालय के समक्ष दो बिंदुओं पर तर्क दिया गया था: *(i)* **पक्षों के बीच कोई अनुबंध नहीं हुआ था;** और *(ii)* नामित मध्यस्थ, अर्थात् राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम के अध्यक्ष को ही मध्यस्थ नियुक्त किया जा सकता है।
>
> पहले बिंदु के संबंध में, हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि अधिनियम की धारा *16* में कहा गया है कि मध्यस्थ न्यायाधिकरण अपने अधिकार क्षेत्र में, जिसमें मध्यस्थता समझौते के अस्तित्व या वैधता का प्रश्न भी शामिल है, निर्णय दे सकता है। **इसलिए, यह मुद्दा कि क्या पक्षों के बीच कोई अनुबंध हुआ था, मध्यस्थ के समक्ष उठाया जा सकता है और हम निर्देश देते हैं कि मध्यस्थ उच्च न्यायालय की किसी भी टिप्पणी से अप्रभावित होकर इस पर निर्णय लेगा।**

21. इस पृष्ठभूमि में, यह ध्यान देने योग्य है कि मध्यस्थ न्यायाधिकरण के समक्ष संपन्न अनुबंध के अस्तित्व पर आपत्ति उठाने के लिए मध्यस्थ को स्पष्ट स्वतंत्रता दिए जाने और विद्वान मध्यस्थ को उच्च न्यायालय के किसी भी पूर्व अवलोकन से अप्रभावित होकर उक्त आपत्ति पर निर्णय लेने के लिए स्पष्ट निर्देश दिए जाने के बावजूद, मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा उक्त आपत्ति से संबंधित कोई मुद्दा, अर्थात् क्या पक्षों के बीच कोई संपन्न अनुबंध अस्तित्व में था, तैयार नहीं किया गया, जबकि मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा इस आशय की प्रारंभिक आपत्ति ली गई थी। बल्कि, मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा तैयार किए गए एकमात्र मुद्दे, नीचे दिए गए हैं:-

"1. क्या उत्तरदाता ने अवैध रूप से अनुबंध रद्द कर दिया है*?*

2. क्या उत्तरदाता ने विश्वासघात किया है*?*

3. क्या दावेदार *29,70,56,41,239/-* रुपये का दावा करने के हकदार हैं*?*

(इस मामले में डी.बी. एसएडब्ल्यू/324/2024 दायर किया गया है। कृपया आगे के आदेशों के लिए इसे देखें)
(29/05/2025 को सुबह 11:02:03 बजे डाउनलोड किया गया)

4. पक्षकार किस राहत के हकदार हैं*?"*

22. अतः, परिणामस्वरूप, ईश्वर की प्रारंभिक आपत्ति, तथा माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 10.12.2009 के आदेश द्वारा प्रदत्त निर्देशों/स्वतंत्रता की घोर अनदेखी करते हुए, यह पता लगाने के लिए कोई मुद्दा नहीं बनाया गया कि क्या प्रतिवादी पक्षों के बीच कोई अनुबंध संपन्न हुआ था। बल्कि, उक्त मुद्दे के निर्माण के अभाव में, जो वर्तमान विवाद का मूल आधार है, मध्यस्थ न्यायाधिकरण ने इस प्रकार बनाए गए चार प्रासंगिक मुद्दों पर निर्णय देना शुरू कर दिया, और इस तथ्य पर ध्यान दिए बिना कि उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा अभी तक कोई कार्य नहीं किया गया है, उन्हें ब्याज सहित 6,53,20,86,357/- रुपये का भुगतान कर दिया।

23. विद्वान मध्यस्थ न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही की विषय-वस्तु के संबंध में विलम्बित चरण में आपत्ति उठाने के पहलू पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उस कथन पर भरोसा किया जा सकता है, जैसा कि **हर्षद चिमन लाल मोदी बनाम डीएलएफ यूनिवर्सल एवं अन्य (2005) 7 एससीसी 791** में प्रतिपादित किया गया है। प्रासंगिक उद्धरण नीचे दिया गया है:-

> *"28. हम इस तर्क को बरकरार रखने में असमर्थ हैं। किसी न्यायालय के क्षेत्राधिकार को कई श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। महत्वपूर्ण श्रेणियां हैं (i) क्षेत्रीय या स्थानीय क्षेत्राधिकार; (ii) आर्थिक क्षेत्राधिकार; और (iii) विषय-वस्तु पर क्षेत्राधिकार। जहां तक क्षेत्रीय और आर्थिक क्षेत्राधिकारों का संबंध है, ऐसे क्षेत्राधिकार पर आपत्ति यथाशीघ्र और किसी भी स्थिति में मुद्दों के निपटारे के समय या उससे पहले लेनी होगी। कानून इस बिंदु पर अच्छी तरह से स्थापित है कि यदि ऐसी आपत्ति यथाशीघ्र नहीं ली जाती है, तो इसे बाद के चरण में लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। हालाँकि, विषय-वस्तु के संबंध में क्षेत्राधिकार पूरी तरह से अलग है और एक अलग आधार पर खड़ा है। जहां किसी न्यायालय के पास क़ानून, चार्टर या आयोग द्वारा लगाए गए किसी सीमा के कारण मुकदमे की विषय-वस्तु पर कोई क्षेत्राधिकार नहीं है, वह कारण या मामले को नहीं उठा सकता है।*
>
> *29.* ***हेल्सबरी के इंग्लैंड के कानून****, (चौथा संस्करण), पुनर्मुद्रण, खंड 10; अनुच्छेद 317; में कहा गया है;* ***317. सहमति और अधित्याग।*** *जहां, क़ानून, चार्टर या आयोग द्वारा लगाए गए किसी सीमा के कारण, कोई न्यायालय किसी विशेष दावे या मामले पर विचार करने के लिए क्षेत्राधिकार के बिना है, न तो पक्षकारों की*

स्वीकृति और न ही स्पष्ट सहमति न्यायालय को क्षेत्राधिकार प्रदान कर सकती है, और न ही सहमति न्यायालय को क्षेत्राधिकार दे सकती है यदि क्षेत्राधिकार से संबंधित कोई शर्त पूरी नहीं हुई है। जहां न्यायालय के पास दावे के विशेष विषय-वस्तु या विशेष पक्षों पर क्षेत्राधिकार है और एकमात्र आपत्ति यह है कि क्या मामले की परिस्थितियों में, न्यायालय को क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना चाहिए, पक्षकार अपने विशेष मामले में क्षेत्राधिकार देने के लिए सहमत हो सकते हैं; या कोई प्रतिवादी बिना विरोध के उपस्थित होकर, या कार्यवाही में कदम उठाकर, न्यायालय द्वारा कार्यवाही का संज्ञान लेने पर आपत्ति करने के अपने अधिकार का अधित्याग कर सकता है। हालाँकि, कोई भी उपस्थिति या उत्तर किसी सीमित न्यायालय को अधिकार क्षेत्र नहीं दे सकता, न ही कोई निजी व्यक्ति किसी न्यायाधीश पर किसी मामले पर निर्णय देने का अधिकार क्षेत्र या कर्तव्य थोप सकता है। किसी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को सीमित करने वाले क़ानून में ऐसे प्रावधान हो सकते हैं जो पक्षकारों को सहमति से अधिकार क्षेत्र का विस्तार करने में सक्षम बनाते हैं।"

*30. **बहरीन पेट्रोलियम कंपनी** मामले में, इस न्यायालय ने यह भी माना कि न तो सहमति, न ही छूट, न ही स्वीकृति किसी ऐसे न्यायालय को अधिकार क्षेत्र प्रदान कर सकती है जो अन्यथा मुकदमे की सुनवाई करने में अक्षम है। यह सर्वमान्य है और इसके लिए किसी प्राधिकार की आवश्यकता नहीं है कि 'जहाँ कोई न्यायालय किसी ऐसे अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने का दायित्व लेता है जो उसके पास नहीं है, उसका निर्णय निरर्थक होता है।' किसी ऐसे न्यायालय द्वारा पारित डिक्री, जिसके पास कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, अनिर्धारित है और इसकी वैधता तब भी स्थापित की जा सकती है जब इसे किसी अधिकार के आधार के रूप में लागू करने का प्रयास किया जाता है, यहाँ तक कि निष्पादन के चरण में या संपार्श्विक कार्यवाही में भी। अधिकार क्षेत्र के बिना किसी न्यायालय द्वारा पारित डिक्री एक कोरम नॉन ज्यूडिस है।*

*31. **किरण सिंह बनाम चमन पासवान [1955]1 एससीआर 117 में**, इस न्यायालय ने घोषित किया; "यह एक मूलभूत सिद्धांत है कि बिना अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय द्वारा पारित डिक्री अमान्य है और इसकी अमान्यता कभी भी स्थापित की जा सकती है और इसे लागू करने या इस पर भरोसा करने की कोशिश की जाती है, निष्पादन के स्तर पर और यहां तक कि संपार्श्विक कार्यवाही में भी। अधिकार क्षेत्र का दोष ... किसी भी डिक्री को पारित करने के न्यायालय के अधिकार पर प्रहार करता है, और इस तरह के दोष को पक्षों की*

सहमति से भी ठीक नहीं किया जा सकता है।"

24. इसलिए, विषय-वस्तु क्षेत्राधिकार के संबंध में विलम्ब से आपत्ति उठाने के पहलू पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून काफी समझ में आता है। संक्षेप में, यह माना जाता है कि जब भी कोई विवाद उत्पन्न होता है, तो वाद/विवाद के विषय-वस्तु क्षेत्राधिकार के संबंध में, वित्तीय और क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार के विपरीत, जिसके संबंध में आपत्ति यथाशीघ्र अर्थात मुद्दों के निर्धारण से पहले दर्ज की जानी चाहिए, आपत्ति किसी भी स्तर पर की जा सकती है, विशेष रूप से इस तथ्य को देखते हुए कि वाद की विषय-वस्तु से उत्पन्न इस प्रकार की आपत्ति विवाद का मूल आधार है, जो न्यायिक निकाय को ऐसे विवाद की अध्यक्षता करने में अक्षम बना सकती है। इसके अलावा, किसी अक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित कोई भी आदेश, जिसके पास उस पर निर्णय करने का अधिकार नहीं है, कानून की दृष्टि में अमान्य होगा।

25. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, यह एक स्वीकृत स्थिति है कि कार्यवाही के आरंभ से और/या पक्षों के बीच विवाद के जन्म से, यानी मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा 1996 के अधिनियम की धारा 11 के तहत प्रारंभिक आवेदन दाखिल करने से लेकर, जब तक मामला इस न्यायालय के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय तक नहीं पहुंचा और उसके बाद, जिस निचली अदालत ने आदेश पारित किया, तब तक, पक्षकारों ने लगातार विषय-वस्तु के अधिकार क्षेत्र के संबंध में आपत्ति उठाई है, यानी इस आधार पर कि चूंकि पक्षों के बीच कोई संपन्न अनुबंध अस्तित्व में नहीं आया, इसलिए उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा धारा 11 के तहत प्रस्तुत आवेदन पोषणीय नहीं है। हालाँकि, बार-बार एक ही आपत्ति उठाए जाने के बावजूद, मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा इस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया, यहाँ तक कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 10.12.2009 के आदेश के तहत इस पर विचार करने के निर्देश जारी किए जाने के बाद भी। परिणामस्वरूप, मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा विवाद की नींव पर प्रहार करने वाली सर्वोपरि आपत्ति पर कोई निष्कर्ष नहीं दिया गया।

26. इसके अलावा, मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा उत्तरदाता संख्या 1 के पक्ष में 18.09.2011 को निर्णय पारित होने के बाद भी, पक्षकार ने 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत आपत्तियां दायर कीं, जिसमें 1996 के अधिनियम की धारा 18 के साथ सिविल प्रक्रिया संहिता (इसके बाद, सीपीसी) की धारा 151 के तहत एक आवेदन भी 09.11.2012 को दायर किया गया था, जिसमें प्रार्थना की गई थी कि तीन गवाहों के

(इस मामले में डी.बी. एसएडब्ल्यू/324/2024 दायर किया गया है। कृपया आगे के आदेशों के लिए इसे देखें)
(29/05/2025 को सुबह 11:02:03 बजे डाउनलोड किया गया)

बयान, जिन्होंने समझौते के निष्पादन के समय फ़ाइल से निपटा था, को नीचे के विद्वान न्यायालय द्वारा दर्ज किया जा सकता है, क्योंकि संपन्न अनुबंध के अस्तित्व / गैर-अस्तित्व पर एक विशिष्ट मुद्दे की अनुपस्थिति में इस बिंदु पर कोई सबूत नहीं दिया जा सकता है। हालांकि, दिनांक 17.11.2012 के आदेश के तहत, नीचे की विद्वान अदालत ने याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत शुरू की गई कार्यवाही में साक्ष्य रिकॉर्ड करने का कोई प्रावधान नहीं है। इसके बाद, सीपीसी की धारा 151 और 1996 के अधिनियम की धारा 82 के साथ आदेश 6 नियम 17 के तहत एक और आवेदन 11.12.2012 को याचिकाकर्ता द्वारा दायर किया गया था, जिसमें आपत्ति याचिका में तीन नए पैराग्राफ जोड़ने की अनुमति मांगी गई थी। हालांकि, दिनांक 15.12.2012 के आदेश के तहत, नीचे की विद्वान अदालत ने उक्त आवेदन को भी खारिज कर दिया और/या खारिज कर दिया। दुखी होकर, याचिकाकर्ता ने एस.बी. सिविल रिट याचिका संख्या 568/2013 को आरआरपीपी निगम बनाम एडीजे नंबर 5 और अन्य के रूप में पेश किया। इस न्यायालय के समक्ष, जिसके द्वारा दोनों पक्षों को सुनने के बाद, इस न्यायालय ने दिनांक 29.01.2013 के आदेश के तहत याचिका को आंशिक रूप से अनुमति दी, जिसमें 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत उठाए गए आपत्तियों में संशोधन आवेदन के पैरा XXIV और XXVI को शामिल करने की अनुमति दी गई। इस प्रकार दायर आपत्तियों में उक्त संशोधन के बाद भी, दिनांक 05.04.2014 के आदेश के तहत, नीचे के विद्वान न्यायालय ने निष्कर्ष निकाले गए अनुबंध की गैर मौजूदगी को प्रदर्शित करने के लिए सबूत पेश करने और/या हलफनामा दाखिल करने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आपत्ति आवेदन को खारिज कर दिया।

27. इसके अलावा, एक संपन्न अनुबंध के अस्तित्व न होने के संबंध में याचिकाकर्ता की प्रमुख आपत्ति पर विचार न करने की ओर निचली अदालत का ध्यान आकर्षित करने के लिए, याचिकाकर्ता ने 20.09.2014 को निचली अदालत के समक्ष एक और आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें प्रार्थना की गई कि चूंकि उत्तरदाता संख्या 2 ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के स्पष्ट निर्देशों के बावजूद इस बात पर कोई मुद्दा नहीं बनाया कि क्या संपन्न अनुबंध अस्तित्व में आया था, पक्षकार इस बिंदु पर साक्ष्य नहीं दे सके और इसलिए, उन्हें ऐसा करने की अनुमति दी जानी चाहिए। हालाँकि, एक संपन्न अनुबंध के अस्तित्व न होने के संबंध में याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए मूलभूत प्रारंभिक आपत्ति के संबंध में किसी भी मुद्दे को तैयार न करने के पहलू पर कोई ध्यान दिए बिना, निचली अदालत ने, माननीय

(इस मामले में डी.बी. एसएडब्ल्यू/324/2024 दायर किया गया है। कृपया आगे के आदेशों के लिए इसे देखें)
(29/05/2025 को सुबह 11:02:03 बजे डाउनलोड किया गया)

सर्वोच्च न्यायालय के 10.12.2009 के आदेश की अज्ञानता में, 20.09.2014 के आवेदन को, आक्षेपित आदेश के अनुसार, खारिज कर दिया।

28. इसलिए, यह निर्णायक रूप से कहा जा सकता है कि विद्वान मध्यस्थ न्यायाधिकरण, संपन्न अनुबंध के मुद्दे की जांच करने में विफल रहा, बावजूद इसके कि इस आशय की प्रारंभिक आपत्ति कई अवसरों पर याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई थी। इसके अलावा, यह ध्यान देने योग्य है कि विद्वान मध्यस्थ न्यायाधिकरण को उक्त आपत्ति पर, इस प्रकार तैयार किए गए चार मुद्दों के निर्माण से पहले विचार करना चाहिए था, क्योंकि उक्त आपत्ति ने न्यायाधिकरण के समक्ष उठाए गए विवाद के मूल पर प्रहार किया था। विषय-वस्तु क्षेत्राधिकार, अर्थात् संपन्न अनुबंध के अस्तित्व न होने के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति पर विचार करने में मध्यस्थ न्यायाधिकरण की उक्त कमी इस तथ्य से और उजागर होती है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मध्यस्थ को याचिकाकर्ता की प्रारंभिक आपत्ति पर, उच्च न्यायालय के किसी भी अवलोकन से अप्रभावित होकर, दिनांक 10.12.2009 के आदेश के अनुसार, निर्णय देने का निर्देश देने के बावजूद, इस पर ध्यान नहीं दिया गया।

29. तदनुसार, इस न्यायालय के विचार में, जब याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति पर विद्वान मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा विधिवत विचार नहीं किया गया था, तो 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत उठाई गई आपत्तियों पर विचार करने के माध्यम से ऐसा करने की जिम्मेदारी नीचे के विद्वान न्यायालय पर आ गई, जिसके समक्ष याचिकाकर्ता ने एक संपन्न अनुबंध के अस्तित्व/गैर-अस्तित्व के तथ्य को स्थापित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने और/या उपयुक्त हलफनामा दायर करने की अनुमति मांगी थी।

<u>धारा ***34:*** मध्यस्थता निर्णय को रद्द करने के लिए आवेदन</u>

(1) किसी मध्यस्थता पंचाट के विरुद्ध न्यायालय का आश्रय केवल उपधारा (2) और उपधारा (3) के अनुसार ऐसे पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन द्वारा ही लिया जा सकेगा।

(2) न्यायालय द्वारा किसी मध्यस्थता पंचाट को केवल तभी अपास्त किया जा सकेगा, यदि-

(क) आवेदन करने वाला पक्षकार 3[मध्यस्थ न्यायाधिकरण के अभिलेख के आधार पर यह स्थापित करता है कि]—

(i) कोई पक्ष किसी अक्षमता से ग्रस्त था, या

(ii) मध्यस्थता समझौता उस कानून के तहत वैध नहीं है जिसके अधीन पक्षकारों ने इसे रखा है या, उस पर कोई संकेत न होने पर,

उस समय लागू कानून के तहत वैध नहीं है; या

(iii) आवेदन करने वाले पक्ष को मध्यस्थ की नियुक्ति या मध्यस्थता कार्यवाही की समुचित सूचना नहीं दी गई थी या वह अपना मामला प्रस्तुत करने में अन्यथा असमर्थ था; या

(iv) मध्यस्थता निर्णय किसी ऐसे विवाद से संबंधित है जो मध्यस्थता के लिए प्रस्तुत किए जाने की शर्तों के अंतर्गत नहीं आता है या उसके अंतर्गत नहीं आता है, या इसमें मध्यस्थता के लिए प्रस्तुत किए जाने के दायरे से परे मामले पर निर्णय शामिल हैं:

बशर्ते कि, यदि मध्यस्थता के लिए प्रस्तुत मामलों पर निर्णयों को उन मामलों से अलग किया जा सकता है जो इस प्रकार प्रस्तुत नहीं किए गए हैं, तो मध्यस्थता पंचाट का केवल वह भाग अपास्त किया जा सकेगा जिसमें मध्यस्थता के लिए प्रस्तुत नहीं किए गए मामलों पर निर्णय अंतर्विष्ट हैं; या

(v) मध्यस्थ न्यायाधिकरण की संरचना या मध्यस्थ प्रक्रिया पक्षकारों की सहमति के अनुसार नहीं थी, जब तक कि ऐसी सहमति इस भाग के किसी ऐसे उपबंध के विरोध में न हो, जिससे पक्षकार छूट नहीं सकते, या ऐसी सहमति के अभाव में, इस भाग के अनुरूप नहीं थी; या

(ख) न्यायालय का मानना है कि—

(i) विवाद की विषय-वस्तु उस समय लागू कानून के तहत मध्यस्थता द्वारा निपटारे योग्य नहीं है, या

(ii) ***मध्यस्थता निर्णय भारत की सार्वजनिक नीति के विपरीत है।***

1 [स्पष्टीकरण 1.-- किसी भी संदेह से बचने के लिए, यह स्पष्ट किया जाता है कि कोई पंचाट भारत की लोक नीति के विरोध में तभी होगा, जब,--

(i) पंचाट का निर्माण धोखाधड़ी या भ्रष्टाचार से प्रेरित या प्रभावित था या धारा 75 या धारा 81 का उल्लंघन था; या

(ii) ***यह भारतीय कानून की मूल नीति का उल्लंघन है;*** *या*

(iii) यह नैतिकता या न्याय की सबसे बुनियादी धारणाओं के विरोध में है। स्पष्टीकरण 2.-- संदेह से बचने के लिए, यह परीक्षण कि क्या भारतीय कानून की मूल नीति का उल्लंघन हुआ है, विवाद के गुण-दोष पर समीक्षा की आवश्यकता नहीं रखेगा।]

2 [(2क) अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थताओं से भिन्न मध्यस्थताओं से उत्पन्न किसी मध्यस्थता पंचाट को भी न्यायालय द्वारा अपास्त किया जा सकेगा, यदि न्यायालय पाता है कि पंचाट, पंचाट के मुख पर स्पष्ट अवैधता प्रकट होने के कारण दूषित है:

परंतु किसी पंचाट को केवल विधि के त्रुटिपूर्ण अनुप्रयोग के आधार पर या साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन के आधार पर अपास्त नहीं किया जाएगा।]

(3) अपास्त करने के लिए आवेदन, उस तारीख से, जिसको आवेदन करने वाले पक्षकार को माध्यस्थम् पंचाट प्राप्त हुआ था, या यदि धारा 33 के अधीन अनुरोध किया गया था, तो उस तारीख से, जिसको माध्यस्थम् न्यायाधिकरण द्वारा उस अनुरोध का निपटारा कर दिया गया था, तीन महीने बीत जाने के पश्चात नहीं किया जा सकेगा:

परन्तु यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि आवेदक को तीन मास की उक्त अवधि के भीतर आवेदन करने से पर्याप्त कारण से रोका गया था तो वह तीस दिन की अतिरिक्त अवधि के भीतर आवेदन पर विचार कर सकता है, किन्तु उसके पश्चात नहीं।

(4) उपधारा (1) के अधीन आवेदन प्राप्त होने पर, न्यायालय, जहां यह समुचित हो और पक्षकार द्वारा ऐसा अनुरोध किया गया हो, कार्यवाही को अपने द्वारा निर्धारित समयावधि के लिए स्थगित कर सकेगा, ताकि मध्यस्थ न्यायाधिकरण को मध्यस्थ कार्यवाही पुनः आरंभ करने का अवसर दिया जा सके या ऐसी अन्य कार्रवाई की जा सके, जो मध्यस्थ न्यायाधिकरण की राय में मध्यस्थ पंचाट को अपास्त करने के आधार को समाप्त कर दे।

[(5) इस धारा के अधीन आवेदन किसी पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को पूर्व सूचना जारी करने के पश्चात् ही दाखिल किया जाएगा और ऐसे आवेदन के साथ आवेदक द्वारा उक्त अपेक्षा के अनुपालन का समर्थन करते हुए शपथ-पत्र संलग्न किया जाएगा।

(6) इस धारा के अधीन आवेदन का निपटारा शीघ्रतापूर्वक तथा किसी भी दशा में, उस तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर किया जाएगा, जिसको उपधारा (5) में निर्दिष्ट नोटिस दूसरे पक्षकार को तामील किया जाता है।]

30. 1996 के अधिनियम की धारा 34 के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि यदि कोई मध्यस्थता निर्णय भारत की लोक नीति के विरुद्ध है, तो न्यायालय उसे रद्द कर सकते हैं। प्रावधान के साथ संलग्न स्पष्टीकरण 1, इस बात को और स्पष्ट करता है कि "भारत की लोक नीति" क्या है। इस संबंध में, यह ध्यान दिया जाता है कि एक मध्यस्थ पुरस्कार को भारत की सार्वजनिक नीति के विरुद्ध कहा जाएगा, बशर्ते कि इसे भारतीय कानून की मौलिक नीति के उल्लंघन में पारित किया गया हो, जैसे कि वर्तमान मामले में, जिसमें दिनांक 18.09.2011 का पुरस्कार उत्तरदाता संख्या 1 के पक्ष में पारित किया गया था,

(इस मामले में डी.बी. एसएडब्ल्यू/324/2024 दायर किया गया है। कृपया आगे के आदेशों के लिए इसे देखें)
(29/05/2025 को सुबह 11:02:03 बजे डाउनलोड किया गया)

विवाद के विषय के संबंध में वकील द्वारा उठाए गए प्रारंभिक आपत्ति की स्पष्ट अज्ञानता में, विशेष रूप से जब माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 10.12.2009 के आदेश के तहत मध्यस्थ न्यायाधिकरण को निर्देश दिया था कि वह प्रतियोगी पक्षों के बीच संपन्न अनुबंध के अस्तित्व/गैर-अस्तित्व से संबंधित उक्त आपत्ति पर विधिवत विचार करे, जिसका निर्धारण विवाद की आधारशिला है।

31. तदनुसार, उपरोक्त टिप्पणियों के आलोक में, यह न्यायालय दिनांक 10.12.2014 के आक्षेपित आदेश को निरस्त करने के लिए उपयुक्त समझता है, साथ ही निम्नतर विद्वान न्यायालय को निर्देश देता है कि वह न्यायनिर्णयन की कार्यवाही छह महीने की अधिकतम सीमा के भीतर पूर्णतः संपन्न करे। ऐसा करते समय, निम्नतर विद्वान न्यायालय मुख्य रूप से प्रतिवादी पक्षकारों के बीच संपन्न अनुबंध के अस्तित्व/अस्तित्व के संबंध में अधिवक्ता द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति पर विचार करेगा, और उसके बाद ही, यदि आवश्यकता हुई, तो मामले के गुण-दोषों पर विचार करेगा। दोनों पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान किया जाए।

32. परिणामस्वरूप, उपरोक्त शर्तों के साथ इस रिट याचिका को स्वीकार किया जाता है। यदि कोई लंबित आवेदन हैं, तो उनका निपटारा किया जाता है।

(समीर जैन),जे

जेकेपी/312

"अस्वीकरण- इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाशा में कर सकेगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी अधिकारिक एवं व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निश्पादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।"

Tarun Mehra
Advocate

(इस मामले में डी.बी. एसएडब्ल्यू/324/2024 दायर किया गया है। कृपया आगे के आदेशों के लिए इसे देखें)
(29/05/2025 को सुबह 11:02:03 बजे डाउनलोड किया गया)